भीष्म साहनी का कहानी संसार

- *डॉ. मंजुला मोहन*

15 अगस्त 1947, यह वह दिन था जिसकी प्रतीक्षा प्रत्येक भारतवासी लंबे समय से कर रहा था। यही वह दिन था जब ब्रिटिश शासन का कभी न अस्त होने वाला सूर्य भारत में अस्त हो गया था। स्वाधीनता प्राप्ति के इस संघर्ष में अनेक लोग शहीद हुए, अनेक लोगों ने जेलों की यातनाएँ सही, न जाने कतने लोगों ने अपनी नौकरियाँ और घर-बार छोड़े और स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े। ब्रिटिश शासन की असंवेदनशील नीतियों और रवैये के कारण किसान संकट में थे, उद्योग-धंधे चौपट हो गये थे, व्यापार की स्थिति दयनीय हो गयी थी। जिस भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विश्वभर में धूम थी, जहाँ दूर-दूर से शिक्षार्थी अध्ययन के लिए आते थे, उसे वे हेय दृष्टि से देखते थे। हमारी भाषाएँ उन्हें कठोर और कर्कश प्रतीत होती थीं। परिणामतः उन्होंने ऐसी शिक्षा नीति बनाई जिससे साक्षरता तो बढ़ी परंतु ऐसा वर्ग तैयार करने में उन्हें सफलता मिली जो शक्ल-सूरत से भले ही भारतीय लगे पर दिल-दिमाग से पूरी तरह अंग्रेज हो। शासन चलाने के लिए उन्हें ऐसे ही लोगों की आवश्यकता भी थी। ऐसे असंवेदनशील विदेशी शासन से मुक्ति पाने का उत्सव मनाया जाना स्वाभाविक ही था किंतु मुक्ति का यह पर्व अपने साथ पीड़ा भी लेकर आया था - भारत-विभाजन की पीड़ा। अभी तक भारत एक राष्ट्र था, अब वह दो भागों में बँट गया - भारत और पाकिस्तान। यह विभाजन धर्म के आधार पर हुआ था, परंतु इसके बीज अतीत और तत्कालीन राजनीति में थे। महमूद गज़नवी, नादिरशाह, चंगेज खाँ जैसे आक्रांताओं ने अनेक बार भारत में कत्लेआम किया और लूटपाट की, अनेक मुस्लिम शासकों ने दीर्घ काल तक यहाँ शासन किया। इन सब परिस्थितियों के मध्य हिंदू-मुसलमानों के बीच रोटी-बेटी का संबंध भले ही न रहा हो किंतु एक-दूसरे के साथ रहने को उन्होंने अपनी नियति मान लिया था। अंग्रेज शासकों ने इतिहास के पृष्ठों में दबी चिंगारी को हवा दी जिसका

परिणामत भारत के विभाजन के रूप में दिखाई देता है। रातों-रात लोगों के मुल्क बदल गये। वे अपने घर-द्वार छोड़ अपरिचित स्थानों पर जाने के लिए विवश हुए। हिंसा के इस तांडव में न जाने कितने अपनों से बिछुड़े, न जाने कितने हथियारों की धार और आग की लपटों की भेंट चढ़े।

भीष्म साहनी ने इस उथल-पुथल भरे पाँचवे दशक में ही कहानी लेखन आरंभ किया था। भारत में घट रही इन सभी घटनाओं के वे प्रत्यक्षदर्शी थे। तत्कालीन अन्य कथाकारों की भाँति-भीष्म जी की रचनाओं में भी इन गतिविधियों की आहट सुनाई दती है। भीष्म जी की उन कहानियों की चर्चा सबसे अधिक होती है जो विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी हैं और सांप्रदायिकता-विरोधी हैं। 'अमृतसर आ गया है', 'निमित्त', 'ज़हूर बख़्श', 'पाली', 'वीरो' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। इन कहानियों में सांप्रदायिकता के ऐसे उन्माद को रेखांकित किया गया है जो जिसे अपनी गिरफ़्त में लेता है, उसका विवेक नष्ट हो जाता है, मानवता और मूल्य निरर्थक हो जाते हैं। ऐसे लोग स्वयं को धर्म का ठेकेदार मानने लगते हैं। राजनीति और व्यक्तिगत स्वार्थ इस प्रवृत्ति को और उकसाते हैं। ऐसे में सामने वाले व्यक्ति का निजी व्यक्तित्व बेमानी हो जाता हे, वह या तो 'काफ़िर' है या 'मुसल्ला'। 'अमृतसर आ गया है' में रेलगाड़ी की एक यात्रा का दृष्टान्त है। हिंदू-मुस्लिम सहयात्रियों का सहज-यात्रा कर रहे अनौपचारिक व्यवहार दंगे की खबर से बदल जाता है। मुस्लिम बहुल क्षेत्र में मुस्लिम आक्रामक हो जाते हैं और हिंदू सहमे हुए हैं। दंगे के कारण डरे हुए हिंदू यात्री को बलात् डिब्बे से उतार दिया जाता है और कोई विरोध नहीं करता। किंतु हिंदू बहुल क्षेत्र में प्रवेश करते ही उलट हिंदू यात्री आक्रामक हो उठते हैं, हिंदू यात्री को उतारने का प्रतिशोध मुस्लिम यात्री को जान से मारकर लिया जाता है और अब मुस्लिम यात्री डरे-सहमे हैं। इसी प्रकार 'निमित्त' कहानी में हिंदू दंगाई इमामुद्दीन के पीछे पड़े हैं, किसी 'मुसल्ले' को बच कर कैसे जाने दें। 'ज़हूर बख़्श' में ज़हूर बख़्श नाम का एक हिंदी प्रेमी और उसका परिवार उपद्रवियों का शिकार बन जाता है। 'रामचरित मानस' की प्रति हिंदू धर्म के

ठेकेदारों के पैरों तले कुचली जाती है, ज़हूर बख़्श उनके सामने गिड़गिड़ाता रहता है। उसकी जान तो बच जाती है किंतु वह पागल हो जाता है और इसी पागलपन में वह मर जाता है।

सांप्रदायिक हिंसा से जुड़ी ये कहानियाँ किसी धर्म विशेष के पक्ष या विपक्ष में नहीं है। ये कहानियाँ उस उन्माद के विरोध में हैं जो मनुष्य की मनुष्यता को मार उसे हिंस्र पशु बना देती है। भले और बुरे लोग दोनों ओर हैं। 'निमित्त' कहानी में इमामुद्दीन पर हमले की फ़िराक में निकले हिंदू उपद्रवी हैं तो उसकी रक्षा करने वाला भी हिंदू ड्राइवर शेरसिंह है। 'पाली' में अपने माता-पिता से बिछुड़े बच्चे को पाकिस्तान का एक मुस्लिम दंपत्ति पालता है और कुछ समय बाद समाज-सेवी संगठन और दोनों देशों की पुलिस के प्रयत्नों से उसे उसके माता-पिता को सौंप दिया जाता है। बच्चे की भावनाओं की चिंता न मौलवी को है न पंडित को। वस्तुतः इन अराजक परिस्थितियों और मानसिकता का चित्रण करते हुए भी कथाकार की आस्था उन सद्प्रवृत्तियों के प्रति है जो किसी धर्म-संप्रदाय विशेष की बपौती नहीं हैं ठीक वैसे ही जैसे राक्षसी वृत्तियों को किसी धर्म या संप्रदाय विशेष से नहीं जोड़ा जा सकता। इसीलिए लेखक की सहानुभूति पाली के वास्तविक और पालक - दोनों माता-पिता के प्रति 'सलमा आपा' में जब कथावाचक के अनजाने कराची शहर में सलमा आपा के अपरिचित भाई के घर पहुँचने पर उनके हार्दिक स्नेह और अपनत्व के व्यवहार से अभिभूत हो जाता है। पाठक अंत तक नहीं समझ पाते कि वह व्यक्ति वास्तव में सलमा आपा का भाई है भी या नहीं। इसी प्रकार 'वीरो' में जन्म से 'सिखणी' वीरो बचपन में सांप्रदायिक उपद्रवों में अपने परिवार से बिछुड़ने के बाद किसी मुस्लिम परिवार में सलीमा नाम से पाला गया था। पारिवारिक सुख-शांति के बीच नगर-कीर्तन के लिए भारत से आये सरदारों की टोलियों को देखकर अपने परिवार की याद और उससे मिलने की इच्छा और छटपटाहट को भाँप कर उसका पुत्र उसके भाई को खोजने का प्रयास करता है और शायद सफल भी होता है। 'झुटपुटे' 1984 में हुए हिंदू-सिख दंगों को आधार बना कर लिखी गयी

कहानी है। इस कहानी में चुन-चुप कर सिखों की हत्या करने के दृश्यों का अंकन है, साथ ही मनुष्य की उस स्वार्थी मनोवृत्ति के भी चित्र हैं जो इस अराजकता की आड़ में लूटपाट कर खुश हो रहे हैं। ऐसे में एक सकारात्मक घटना घटती है - प्राणों की चिंता किये बिना हिंसक मनोवृत्ति को धता बताते हुए एक सिख ड्राइवर दूध की गाड़ी लेकर प्रकट होते हैं क्योंकि बच्चों को दूध तो मिलना ही चाहिए।

भीष्म साहनी की इन कहानियों को पढ़ते हुए अज्ञेय की 'शरणागत', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' और कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया है' आदि कहानियाँ बरबस ही याद हो आती हैं जिनमें व्यक्ति की पहचान उसका धर्म ही बन जाता है और उसी के अनुसार वह या तो शिकार बनता है या शिकारी। इन स्थितियों के मूल में राजनीति ही होती है।

भीष्म जी की एक बहुचर्चित कहानी है 'वाङ्चू'। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय राजनीति किस प्रकार एक आम आदमी को प्रभावित करती है यह कहानी इसे बहुत प्रभावशाली ढंग से व्याख्यायित करती है। 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' के समय में एक चीनी नागरिक-वाङचू सारनाथ में बौद्ध रचनाओं के अध्ययन-हेतु आया था। भारत में घट रही राजनैतिक-सामाजिक घटनाओं से उसका कोई सरोकार ही नहीं था। न उससे किसी को कोई शिकायत थी न उसे किसी से। किंतु तभी भारत-चीन के संबंधों में खटास आ गयी। अपने देश जाने पर उसे संदेह की दृष्टि से देखा गया और भारत वापिस आने पर उसे चीनी जासूस समझ लिया गया। व्यक्ति वही था परंतु राजनैतिक संबंधों के परिवर्तन से उसे कैसी यातनाएँ झेलनी पड़ीं उन्हीं की कहानी है 'वाङचू'।

स्वातंत्र्योत्तर काल में कथाकारों ने मध्यवर्ग की विभिन्न मनोवृत्तियों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। स्वतंत्रता के पश्चात् भारी उद्योगों के विकास और सड़कों, पुलों, बाँधों, बिजली घरों की वृद्धि के साथ नौकरी पेशा, मध्यवर्ग में भी वृद्धि होना स्वाभाविक था। स्वातंत्र्योत्तर अधिकांश कथाकारों जैसे मोहन

राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, अमरकांत, यशपाल आदि की कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं और मानसिकता के दर्शन होते हैं। भीष्म जी की रचनाओं में भी मध्यवर्गीय मानसिकता की विभिन्न छवियाँ दिखाई देती हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् 'धन, पद और प्रतिष्ठा' एक मात्र जीवन-मूल्य बन गया, उपयोगितावादी दृष्टिकोण हावी होता गया, आत्मकेन्द्रितता बढ़ती गयी। फलस्वरूप संयुक्त परिवार बिरखते गये, पुरानी पीढ़ी के प्रति अवज्ञा का भाव घर करने लगा। 'चीफ़ की दावत' ऐसे ही व्यक्ति शामनाथ की कहानी है। उसके लिए माँ फालतू सामान की भाँति हैं लेकिन अचानक माँ की बनाई फुलकारी बॉस को पसंद आ जाती है और सहसा माँ बेटे के लिए उपयोगी हो जाती है। यों पहले प्रेमचंद भी बुजुर्गों की दयनीय स्थिति पर 'बूढ़ी काकी' लिख चुके थे किंतु 'बूढ़ी काकी' में काकी के भतीजे और बहू को अपनी भूल का ज्ञान होता है और काकी पुनः खोया सम्मान वापिस पाती हैं। किंतु 'चीफ़ की दावत' में माँ की उपयोगिता इसलिए बढ़ती है कि उसकी फुलकारी के मार्ग से पुत्र को पदोन्नति का लक्ष्य प्राप्त होने की संभावना है। उषा प्रियंवदा की 'वापसी' में भी नौकरी से रिटायर होकर आये गजाधर बाबू को अपने परिवार की उपेक्षा के कारण फिर से किसी नयी नौकरी पर घर छोड़ कर जाना पड़ता है।

भारत में अंग्रेजी भाषा, साहित्य और सभ्यता का वर्चस्व स्वतंत्रता के बाद भी कम नहीं हुआ है। आज भी उसका नशा हमारे मनो-मस्तिष्क पर इस बुरी तरह हावी है कि उससे अनजान लोगों को असभ्य और गँवार समझा जाता है। भीष्म जी की 'अहं ब्रह्मास्मि' एक ऐसे ही व्यक्ति की मनोदशा पर आधारित है। परंतु एक बार अंग्रेज अफ़सरों द्वारा किया गया अपमान उसे हिला देता है और उस मनःस्थिति में 'अहं ब्रह्मास्मि' का मंत्र उसे अपमान के दंश से उबारता है।

हमारे देश के बहुत से युवक मुख्यतः आर्थिक कारणों से विदेश में या महानगरों में जा बसते हैं और फिर वहीं के होकर रह जाते हैं। भीष्म जी की 'ओ हरामज़ादे' एक ऐसे ही युवक लाल साहब की कहानी है जो नौकरी के लिए यूरोप के किसी देश में जा बसा है। उसे वहाँ सब कुछ मिलता है - अच्छी

नौकरी, सम्मान, प्रेम करने वाली पत्नी, प्यारी सी बेटियाँ। लेकिन फिर भी लाल छटपटाते रहते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि उनकी पहचान कहीं खो गयी है। लेखक ने उनकी इस छटपटाहट को कई माध्यमों से व्यक्त किया है - भारत-संबंधी पुस्तकों के संग्रह से, भारत के मानचित्रों से, कुरता-पजामा और जोधपुरी जूतियाँ पहनकर सड़कों पर घूमने की इच्छा से। अपने देश को देखने की ललक उन्हें भारत खींच लाती है पर अपरिचय यहाँ भी साथ नहीं छोड़ता। वह इस पीड़ा के साथ जीवन व्यतीत करने को विवश होता है कि ''हाँ एक बात की चाह मन में अभी तक मरी नहीं है, इस बुढ़ापे में भी नहीं मरी है कि सड़क पर चलते हुए कभी अचानक कहीं से आवाज़ आये 'ओ हराम जादे', और मैं लपक कर उस आदमी को गले से लगा लूँ।' और इस प्रकार यह उन अधिकांश भारतीयों की मनोदशा की कहानी बन जाती है। जो अपना घर-द्वार छोड़ किसी दूसरे देश या प्रांत में जा बसे हैं।

भीष्म साहनी प्रगतिशील लेखक संघ और उसी की नाट्य संस्था 'इप्टा' से जुड़े थे जो वंचितों और शोषितों की पक्षधर है। जो लोग भीष्म जी के सरल-तरल-संवेदनशील व्यक्तित्व से परिचित रहे हैं वे उनकी इस पक्षधरता को भली-भाँति समझ सकते हैं। उनकी अनेक कहानियाँ वंचितों के प्रति साधन-संपन्न लोगें की क्रूर मानसिकता और क्रूर व्यवहार पर आधारित हैं। उदाहरणार्थ 'पिकनिक' गौरी नामक उस मजदूर स्त्री की कहानी है जो घरों में चौका-बर्तन कर अपना निर्वाह करती है। इन घरों से प्राप्त रूखा-सूखा-बासी खाना खाना और गंदा पानी पीना उनकी विवशता है किंतु संपन्न घरों के सदस्यों को यह उनका पिकनिक मनाने जैसा लगता है। इसी प्रकार 'सागमीट' कहानी में जग्गा नामक एक घरेलू नौकर की विवशता का अंकन है जो तन-मन से अपने मालिक की सेवा करता है। अपने मालिक का कृपापात्र भी है जो कभी दस-बीस रुपये अतिरिक्त देकर और कभी उसकी प्रशंसा कर उसे पुचकारते रहते हैं जैसे वह आदमी न हो 'जैकी कुत्ता' हो - 'पर इन्होंने उसे ऐसा हाथ में लिया, इन्हीं के कदमों में चक्कर काटता फिरता था।' लेकिन जैसे जैकी अपनी ही गाड़ी के

नीचे कुचला गया वैसे ही जग्गा भी मालिक के भाई की करतूतों के कारण आत्महत्या करने पर विवश हो गया। गरीबी रेखा से नीचे जीने को मजदूरों की विवशता से जूड़ी ये कहानियाँ यशपाल की 'आदमी का बच्चा' की याद दिलाती हैं। इस कहानी की नैरेटर द्वारा पति की 'उदारता' और 'समझदारी' की बार-बार प्रशंसा करना शायद उसकी विवशता और भारतीय समाज में स्त्रियों की दोयम दर्जे की स्थिति के भी परिचायक हैं। 'त्रास' कहानी में दिल्ली जैसे महानगर में घृणा के व्यापार का चित्रण है जो किसी व्यक्ति के प्रति नहीं बल्कि साधन-संपन्न वर्ग की साधनहीन वर्ग के प्रति है। प्रस्तुत कहानी में हुई दुर्घटना इसी वर्गीय घृणा का परिणाम थी। मोटरवाला अपनी गलती न मान उस साइकिल सवार को ही दुर्घटना का उत्तरदायी ठहरा रहा था। उसकी बुद्धि बार-बार दुर्घटना के शिकार की हैसियत टटोल रही थी - 'कितने का आसामी होगा।' उधर वह साइकिल सवार इसी मोटर वाले की उदारता पर निहाल था कि उसे अस्पताल में भर्ती करा दिया तो उसकी जान बच गयी - 'मेरे अच्छे करम थे साहिब जो आपकी मोटर से टक्कर हुई...।'

किसी भी व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए जहाँ एक ओर नीति-निर्धारक मंत्रालयों की भूमिका होती है वहीं उन्हें कार्यान्वित करने वाले अधिकारियों और कर्मचारियों का भी योगदान होता है। समय-समय पर विचार-विमर्श और कार्यशालाओं का आयोजन भी इसमें सहायक होता है। 'खूँटे' कहानी भी ऐसे ही एक सेमिनार पर आधारित है जिसका वास्तविक उद्देश्य सेमिनार के बहाने कुछ समय के लिए मौज-मस्ती करना और कुछ पैसा बचाना है - ''हम सब अपने-अपने खूँटे उड़ाकर इस सेमिनार में भाग लेने आये थे। सेमिनार का आयोजन दिल्ली से दूर इस नगर में किया गया था, इस आशय से कि कुछ पैसे भी बच जाएँगे, कुछ सैर भी हो जाएगी।'' यह कहानी कार्यालयों में काम करने वाले उन अधिकारियों की मानसिकता को भी उद्घाटित करता है जो हर समय और हर जगह पने अधीनस्थों को दबाब में रखते हैं। 'खूँटे' में जैन, विनायक और हेडक्लर्क का परस्पर ऐसा ही व्यवहार है। परिणामत: उनके बीच

कभी कोई आत्मीय संबंध बन ही नहीं पाता। किंतु यह विनायक जैसों की विवशता ही है कि अपनी नौकरी बचाने के लिए जैन के अनुचित व्यवहार को भी सहन करना पड़ता है।

भीष्म साहनी की कहानियों की एक बड़ी विशेषता उनकी सहज संप्रेषणीयता है। आम बोलचाल की सरल-सहज भाषा, बिंबों और प्रतीकों का विधान और स्थितियों का सूक्ष्म ब्यौरों के साथ अंकन इस संप्रेषणीयता में साधक हैं। सांप्रदायिक अहिष्णुता संबंधी कहानियों में उन्हें 'झुटपुटे' के प्रतीक का बहुलता से प्रयोग किया है। झुटपुटे दिन और रात का मिलन-बिंदु है जब अस्पष्टता की सी स्थिति होती है। कथाकार ने अविवेक, अनिर्णय और अनिश्चय की स्थिति के लिए यह प्रतीक चुना है। ये कहानियाँ प्रायः शाम के झुटपुटे से आरंभ होती हैं और सुबह के उजाले में आशा की किरण के साथ समाप्त। 'खूँटे' में पूरी कहानी में जैन और विनायक के तनावपूर्ण संबंधों के कारण रस्साकशी सी चलती रहती है। आशा थी कि शायद यह तनाव ढीला पड़ जाए किंतु वह फलीभूत होती नहीं प्रतीत होती - ''लगा जैसे कोई स्वप्न भंग हो रहा हो। वे पक्षी जो चारों ओर छिटकी लालिमा में अठखेलियाँ कर रहे थे, पंख समेट कर जाने कहाँ चले गये थे। वातावरण में अवसाद की धूल उड़ने लगी थी।'' वस्तुतः भीष्म जी की लगभग सभी कहानियों में इस प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया गया है जो परिस्थितियों, मनःस्थितियों और लेखक के मंतव्य को स्पष्ट करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल की कहानियों विशेषतः नयी कहानियों के दौर में प्रतीकों और बिंबों का सहारा खूब लिया गया है। उदाहरणार्थ अमरकांत की 'जिंदगी और जोंक' में जोंक उस जिजीविषा का प्रतीक है जो विषम परिस्थितियों में भी जीने की इच्छा बनाये रखती है। राजेंद्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' में लक्ष्मी भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति की परिचायक है। इसी प्रकार कमलेश्वर की कहानी 'जार्ज पंचम की नाक' में जार्ज पंचम की मूर्ति की टूटी नाक की मरम्मत के बहाने भ्रष्टाचार की अभिव्यक्ति हुई है। भीष्म जी की कुछ कहानियों में कुछ शब्दों या वाक्यों की पुनरावृत्ति को भी टेक्नीक की भाँति प्रयोग

किया गया है। उदाहरण के लिए 'साग-मीट' नामक कहानी में 'मर्द लोग समझदार होते हैं' और 'मुझसे अपनी जान नहीं सँभाली जाती' वाक्यों की अनेकशः आवृत्ति की गयी है। पहले वाक्य से समाज में पुरुषों के वर्चस्व को रेखांकित किया गया है और दूसरे से कथावाचिका की उदासी और विवशता को। भीष्म जी की कहानियों में उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। हर स्थिति-परिस्थिति के सूक्ष्मतम ब्यौरों पर उनका ध्यान है और ये ब्यौरे उनकी रचनाओं की बहुत बड़ी शक्ति हैं।

भीष्म साहनी की कहानियाँ संख्या में बहुत अधिक हैं। इस समय उन सभी की चर्चा असंभव थी। परंतु उनकी इन कुछ कहानियों के माध्यम से यह कहा जा सकता है कि उनकी कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थितियों, प्रमुख घटनाओं और उनके प्रभाव तथा मनोदशाओं के अनेक चित्र उकेरे गये हैं। उनकी सहानुभूति आम आदमी विशेषतः वंचितों के प्रति है। उनकी कहानियों के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर काल की कहानियों की प्रवृत्तियों को भी समझा जा सकता है।